National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2015; 1(2): 16-18
© 2015 NJHSR
www.sanskritarticle.com
Received: 28-10-2015
Accepted: 29-10-2015

डॉ शंकर ए.राठोड,
धर्म-दीप प्लाट-157,
पूजा कॉलोनी,
विश्वविद्यालय के पास,
गुलबर्गा,कर्नाटक राज्य

Correspondence
डॉ शंकर ए.राठोड,
धर्म-दीप प्लाट-157,
पूजा कॉलोनी,
विश्वविद्यालय के पास,
गुलबर्गा,कर्नाटक राज्य

दलित आत्मकथाओं में चित्रित दलित जीवन

डॉ शंकर ए.राठोड

दलित शब्द का तात्पर्य होता है दमित, कुचला हुआ, दबा हुआ, या शोषित वह व्यक्ति जिसे समाज में कोइ स्वतंत्रता न हो। शोषित का अर्थ यह है कि समाज के महत्वपूर्ण हाते हुए भी निम्न की जिंदगी जिते रहे। ईक्किसवी सदी का साहित्य केवल दलित या स्त्री को लेकर लिखा गया। प्रश्न यह उठता है कि दलित साहित्य का अविर्भाव कैसे हुआ?उत्तर यह मिलता है कि दलित साहित्य का अविर्भाव वेदना से हुआ। व्यक्ति के पास न आवाज न ताकत है तो अपमान कितना सह सकता? उसका कोई न कोई हल जरूर निकाल लेता....वही दलित साहित्य....विशेषकर आत्मकथाओं के द्वारा अपने दर्द को बाहर निकालने के प्रयास दलित साहित्यकार ने किये है उसमें आत्मकथा प्रमुख रही है।

वैदिक समय की वर्ण व्यवस्था में वैश्य और शुद्रो की स्तिथि–गति को आप जानते है कि वे हर सुख और सुविधा से वंचित थे, यहां तक कि उन्हें संस्कृत पढने का अधिकार भी नही था, और यह व्यवस्था हजारों साल बाद आज बीसवी-ईक्किसवी सती में पूर्ण रूप से प्रचलित है और उस अमानविय प्रथा के खिलाफ लडने का काम सबसे प्रथम डॉ आंबेडकर ने किया था। दलित साहित्य की लहर विशेषकर महाराष्ट्र में उपजी और सारे भारत में लहरी। डॉ ओमप्रकाश वाल्मिक के प्रकार- "दलित साहित्य कोइ आनंद या मोक्ष का साहित्य न होकर यह एक आदमी को आदमी की तरह जीने देने का साहित्य हैं।" [1]

एक प्रश्न यह उठता है कि किसे दलित साहित्य कहा जाये? आज बहुत से सवर्णिय लेखक दलितों को लेकर उनकी समस्याओं को लेकर लिख रहे है उन्हे दलित साहित्य कहा जाये? या केवल दलितो द्वारा लिखा साहित्य दलित साहित्य होगा? यह वाद-विवाद कुछ भी हो लेकिन दलित समस्या को लेकर लिखा गया वह किसी के द्वारा भी लिखा गया साहित्य दलित साहित्य कहलाता है।

अब हम आयेंगे दलित आत्मकथा पर, दलित आत्मकथाओं में प्रमुख है- मोहनदास नेमिसराय? ओमप्रकाश वाल्मिक, कौश्यल्या बसंत्री, सूरजपाल चैव्हान, रूपनारायण सोनकर, मराठी लेखक अशोक पवार आदि है।

आज चर्चा हम नेमिसराय की आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' लेकर करेंगे। जब पूर्ण रूप से दलितो की जीती-जागती केवल नेमिसराय की ही नही सारे दलितो की आत्मकथा कहलाती है अपने अपने पिंजरे। नेमिसराय किस प्रकार दलितेत्तर दलितो की स्त्रियों पर अत्याचार किया करते थे इसका जीता जागता उदाहरण दिया है। दलित बेटी के जन्म पर मातम मनाते थे कि उसकी परवरिश कैसे की जाये?उसे अन्य लोगो से कैसे बचाया जाये?यह प्रश्न उन दलित मॉ-बाप के सामने थे। एक जगह पर नेमिसराय कहते है-"जिस घर में बेटी पैदा हो जाती है उसका बाप बेटी के जन्म पर माथा पकडकर बैठ जाता था, मॉ गुमसुम होकर रह जाती थी। लडकियॉ दुख कलह अभाव लडाई- झगडे की प्रतीक मानी जाती थी।"[2] स्वयं नेमिसराय आत्मकथा में उसकी बहन पढने जाती तो गांव के लडके उन्हे छेड छाड करते इसका उल्लेख किया हैं। प्राचिन काल से लेकर आज तक भी विशेषकर दलित स्त्री के दर्द में कोई कमी नही है, घर-

बाहर दोनो जगह वे शोषित है ''अपने अपने पिन्जरे में'' ज्यादातर स्त्री पर होने वाले जुल्म पर प्रकाश डालनें की कोशिश की गई है। मोहनदास कहते है-'' गांवो में दो दलित समाज की महिलाओं पर खूब जुर्म और अत्याचार होता था। उसमें घासवालियो पर खूब कहर ढाया जाता था, उनके नाडे वही खेतो में टुटते थे। उनके नाडे तोडना स्वर्ण अपना कर्तव्य और अपना जन्मजात अधिकार समझते थे।''[2]

जब डॉ बाबा साहेब ने मनुस्मृति का विरोध करते हुए खुले आम जलाये थे, कई हद तक स्त्री एंव दलितो को बांध कर अधिकारो से वन्चित किया गया था। बहुत सी आत्मकथाएं वास्तव में केवल उनके व्यक्तिक जीवन की अभिव्यक्ती न होकर एक समग्र वंचित समाज की अभिव्यक्ती है। दलित आत्मकथा का आरंभ में प्रथम मराठी भाषा में लिखी गयी और दलित साहित्य की प्रथम प्रेरणा ही मराठी साहित्य से मिली है, ज्यादातर दलित साहित्य मराठी भाषा में लिखा गया, इसका कारण ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, और दलितो का सूरज डॉ आम्बेडकर की जन्मभूमि महाराष्ट्र रहने के कारण स्वभाविक रूप से दलित साहित्य लिखा गया।

ओमप्रकाश वाल्मिक की आत्मकथा " झुठन " में प्रकाश ने दलित होने के अभिशापों को प्रस्तुत किया है। स्वयं लेखक की मॉ एक स्वाभिमानी स्त्री है, एक परिवार के लालन-पोषण करने वाली स्त्री के रूप में चित्रित किया है। ओमप्रकाश की मॉ अनपढ- है लेकिन वह अपने बच्चों के परवरिश में परिपूर्ण है। गॉव में जब किसी का विवाह होता तो उसका झूठन दलित को ही उठाना पडता था, एक प्रसंग में ओमप्रकाश की मॉ झुठन का टोकरा हाथों से फेंख देती है, और उसके बाद जुठन उठाने का काम कभी नही करती न किसी को करने देती। उस परिवार में मॉ के लाड प्यार के कारण ही वाल्मिक एक परिपूर्ण व्यक्ति बन पाया।[3] किसी भी आत्मकथा को देखिये और उस लेखक की आयु को पहचानिये कि वह व्यक्ति अपने जीवन के अन्तिम दिनों या आयु की उत्तरार्ध में लिखता है क्योंकि आत्मकथा साहित्य की एक मात्र ऐसी विधा है उसे लिखने के लिये साहस और धैर्य की जरूरत पडती है। उसमें यथार्थ कि लिखने की जरूरत है, उसे आदर्श के रंग में रंगकर लिखना गलत होता है।

कौशल्या बसंत्री की आत्मकथा " दोहरा अभिशाप " एक स्त्री की जीवन गाथा कहलाता है। दलित लेखक और लेखिका की आत्मकथा में फर्क यह है कि दलित स्त्री का दर्द पुरूषो की तुलना में दोहरा है अर्थातःदुगना है, और इसका विस्त्रत चित्रण दोहरा अभिशाप में मिलता है। कौशल्या लिखती है कि मेरे लिखने पर पति, पुत्र, भाई सब नाराज रहते है लेकिन मुझे भी तो स्वतंत्रता चाहिये में भी तो एक इन्सान हूँ। "समाज की आँखें खोलने के लिये स्त्री लिखना जरूर है"[4] कौशल्या की आत्मकथा में स्त्री केवल बाहर के शोषण से मात्र शोषित नही परिवार में होने वाली घरेलु हिंसा और पित्रस्तात्मक प्रवृति के कारण भी बेबस नजर आती, इसे विस्तृत रूप से लेखिका ने ' दोहरा अभिशाप ' में व्यक्त किया है। लेखिका अपने पारिवारिक रिश्तो के बारे में कहती है-"पति देवेंद्र और मेरे बिच में हमेशा झगडा होता था,उसने मुझे कभी समझा नही, न प्यार दिया, और गंदी-गंदी गालिया देते रहते थे, मारना तो एक प्रकार से आम बात बन गई थी।"[4] दलित साहित्य में हम एक और स्वर्ण लोगो की बातें करते है तो दुसरी ओर घरेलु हिंसा, कौशल्या ने इस घरेलु शोषण को दोहरा अभिशाप में व्यक्त किया है। अंतिम में पति से तंग आकर पति का घर छोडने पर मजबूर हो जाती है। लेखिका इस आत्मकथा में यह भी सोचने में मजबूर हाती है कि मेरे गलत फैसले से बच्चों का भविष्य खराब न हो जाये। केवल पारिवारिक हिंसा ही नही बाहर मेडिकल वाले, सब्जी वालो आदि की शोषण की घटना को भी प्रस्तुत की है।

सूरजपाल चैव्हान की आत्मकथा " संतप्त " में लेखक ने स्वयं से ज्यादा स्त्री जीवन की झांकी प्रस्तुत की है। दलित आत्मकथाओं में लेखकों ने अपने आप से ज्यादा अपनी परिवार या दलित शोषित पर होने वाले अत्याचारों का खुलकर चित्रण दलित आत्मकथाओं में हुआ है। स्वयं सूरजपाल की मॉ एक शोषित एंव बलत्कारित स्त्री के रूप में नजर आती है। जो लोग सत्ता को अपना जन्मजात अधिकार मानकर चलते थे, वे दलित स्त्री पर हमेशा शोषण करते नजर आते दिखाइ देते है। सूरजपाल पर स्त्री विरोधी का दर्जा भी देते है कि सूरजपाल स्त्री को बहुत निचे दिखाया है लेकिन वही सूरजपाल अपनी पुत्री का पालन-पोषण ठीक ढंग से करते हुए नजर आते है। सूरजपाल की दुसरी आत्मकथा तिरस्कृत का प्रकाशन 2002 में हुआ और इस आत्मकथा की भूमिका में प्रसिद्ध आलोचक डॉ काशिनाथ लिखते है कि -"तिरस्कृत यदि तिरस्कृत होने की आत्मकथा है तो संतप्त तिरस्कृत होने की संतापो की तिरस्कृत अपने गांव से, कार्यालयो से इन सबके शोषण का मुकाबला किया जा सकता है, लेकिन उन संतापो का कोइ क्या करे? जिसे तमाम लोगो के सिवा यंहा तक कि पत्नि, बेटे तक को तिरस्कृतने दिया हो।"[5] संतप्त का प्रकाशन ***2006*** में हुआ, लेकिन प्रश्न यह उठता है कि लेखक को दो-दो आत्मकथा लिखने की नौबत क्यों आ गयी? लेकिन सुरजपाल ने आत्मकथा को भागो में न बॉटते हुए अलग अलग नाम दे दिया है। लेखक स्वयं यह मान चुके है कि तिरस्कृत के जबाब के लिये ही संतप्त लिखना पडा। दत्तक पुत्र और बहु विमला को लेकर लिखना था, लेखक कहते है कि जो बातें तिरस्कृत में अधुरी रह गयी थी या छुट गई थी उन्ही संतप्त में पूरा किया है। संतप्त में बालक रूप में सुरजपाल का प्रवेश होता है और बहुत अभावग्रस्त

था। बहुत दिक्कत के बाद दो वक्त की रोटी मिल पाती थी। ऐसें समय में लेखक की मॉ के साथ जयपाल अत्याचार कर देता है।

जयपाल के साथ विरोध करने पर वह इस परिवार के साथ बदला लेता है। लेखक को मॉ से भी दूर होना पडता है। यह घटना सूरजपाल को झकझोर देती है, उन्हें यहां तक कि रोटी चुराकर खाना पडता है, समाज के गंदे नियमों से सुरजपाल के भीतर की नैतिकता खोने लग जाती है। और सुरजपाल से घिनोनी हरकत कराने लगते है। रूसी मेम की एक घटना को लेखक सुनाता है कि रूसी मेम टोस्ट देने के बहाने निर्वस्त्र होकर लेखक से अपने शरीर को मालिस करवाती है,'संतोताई' भी रूसी मेम के समान बेटे के उम्र के बालक सुरजपाल के साथ रोटी का लालच दिखाकर क्या-क्या करवाती, इसे कहते है शरम आती है। और एक समाज का मुखिया कहलाने वाला मुंशी मामा खाना खिलाने की आशा दिखाकर हस्तमैथुन करवाते है। 'संतप्त' केवल सुरजपाल की कहानी न कहती हुई संपूर्ण समाज के सामने से घिनोनी हरकतों का परदा उठाती है। सुरजपाल यह भी कहते है कि मॉ की मृत्यु के बाद पिता किसी माली की पत्नि के साथ चक्कर चलाते है। का चित्रण किया हैं। तीज त्यौहार पर विशेषकर होली के समय में दलित स्त्रियों को गालियॉ देने की परम्परा को बहुत बारिकी के साथ लेखक ने दिखाया है। एक जगह पर लिखते है कि-"हमारा उद्धेश्य ब्राह्मण स्त्रियों को गाली देना नही है, हमारा उद्धेश्य हमारी दलित स्त्रियों को अपमानित होने से बचाना है, हम तो यही चाहते है कि औरत-औरत होती है चाहे वे दलित हो या गैर दलित, सभी औरतों की गरिमा, मान, सम्मान की रक्षा करना हम सभी का काम है। ब्राह्मण को नसीहत दिखाना था। समाज में अपमानित करने वाली परंपरा को बंद करना ही हमारा उद्धेश्य है।" घर वाले, बाहर के लोगों का शोषित, अन्त में एक परिपूर्ण व्यक्तित्व के साथ उभरा है। जैसे सुनार के हाथों में तपता सोना परिपक्व बन जाता है। कुल मिलाकर संतप्त एक यथार्थ को दर्शाने वाली आत्मकथा लगती है।

और एक प्रसिद्ध दलित आत्मकथा है रूपनारायण की 'नागफ़नी' नागफनी के बारे में हंस के संपादक राजेन्द्र यादव लिखते है कि- "हर आत्मकथा में एक चीख सुनाई पडती है लेकिन नागफनी में एक क्रान्ती की भावना नजर आती है "[6] नागफनी का प्रारंभ एक गांव में होने वाले मेला से होता है, इसे ज्वारो का मेला कहते है। इस मेलें में स्वर्णो की स्त्रियॉ माथे पर कलश उठाकर चलती है, लेकिन दलित स्त्री को कोइ कलश उठाने का अधिकार नही रहता। यह परम्परा केवल आज से नही तीस सालों से प्रचलित है। तीस साल के बाद रूपनारायण की चाची जब इस कलश को उठाकर इस मेलें में चलती तो उसे ब्राह्मण स्त्रियों द्वारा उनकी पिटाई होती है और इस घटना से गांव के सभी दलितों द्वारा एक जुट होकर सवर्णो के खिलाफ मोर्चा उठाते है। इस
आत्मकथा की दूसरी घटना होली के त्यौहार पर दलित स्त्रियों एंव पुरूष सभी को सवर्ण लोग जात के नाम लेकर गालियॉ देते है और दलितों को अपमानित करते है। अगर आत्मकथा की बात की जाये तो नागफनी का पक्ष स्त्री का है, यह आत्मकथा स्त्री विशेषकर स्त्री सशक्तिकरण का एक दस्तावेज कह सकते है। नागफनी में बहुत से प्रसंग अति मार्मिक नजर आते है। एक मार्मिक घटना है भदईया चमार सवर्णो के पास काम करने को मना करता है तो हरिशंकर चमार को बेरहमी से इतनी पिटाई करता है कि वह लाचार होकर रह जाता है। नागफनी केवल अत्याचार को सहन करने वाली आत्मकथा न होकर उस अन्याय को किस प्रकार से रोका जाये या उन्हें दण्ड दिया जाने का विचार को लेकर है।
नागफनी शब्द एक प्रतिकात्मक लगता है, अर्थातः नागफनी के कांटे बहुत तीखे होते है इसके कांटे सभी हरेभरे रहते है लेकिन इसका घाव बहुत गहरा होता है नागफनी के कांटे पीडा के प्रतिक के रूप में सामने आये है। लेखक ने इस नागफनी के कांटे को समाज में व्याप्त कुरूतियॉ, जाति पद्धतियॉ, असमानता,आदि के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है, जो समाज को पीडा पंहुचाते है। जिस प्रकार नागफनी के कांटे शरीर में चुभ जाने के बाद भी सुख नही पाते उसी प्रकार जातिवाद समाज से कभी खत्म नही होता है। और इस आत्मकथा का शिर्षक शत-प्रतिशत सार्थक कहलाती है।

निष्कर्ष संदर्भग्रंथ :-

1 दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र
2 अपने-अपने पिन्जरे
3 ओम प्रकाश वाल्मिक की आत्मकथा-झूठन
4 कौशलया का- दोहरा अभिशाप
5 सूरजपाल चौव्हान संतप्त और तिरस्कार
6 रूपनारायण की- नागफनी